प्रणय

लेखक

बी० बी० सुब्बाराव 'हरिकिशोर''
एम० ए० बी० ओ० यल
"साहित्यरत्न"

हिन्दू कालेज, गुण्टूर

प्रथम संस्करण
अक्तूबर १९५५

★

मूल्य
एक रुपया

★

आन्ध्र हिन्दी प्रचार प्रेस,
विजयवाडा-2.

प्रिय महाशय,

आपका ११-९-५५ का कृपा पत्र प्राप्त हुआ। अलग डाक से आपके 'प्रणय' नामक काव्य की एक प्रति भी मिली, धन्यवाद।

आपने राष्ट्रभाषा में काव्य का सृजन किया, इसके लिए हम आपकी सराहना करते हैं। आशा है, इसी प्रकार आपके प्रयत्न हमें दक्षिण से परिचित कराने में सफल होंगे।

मैं आपकी सफलता के लिए हार्दिक शुभकामना करता हूँ।

भवदीय,
मैथिलीशरण

नई दिल्ली
२७-९-५५

प्रिय भाई सुब्बाराव जी,

सस्नेह वंदे,

"प्रणय" पुस्तक ने आपका परिचय दिया। मन किसी अज्ञात प्रसन्नता से भर गया। इस में असफल प्रेम की भूमिका है। कविता वेदना से तडपती और व्यथा से लड-खडाती आगे बढी है। कल्पना और अलंकारों का सफल प्रयोग किया है। भाव-व्यंजना मम-स्पर्शी है। आप के मन के भाव्य-चित्र "प्रणय" में मूर्तिमती है।

पुस्तक चिंतनशील और सहृदयता की परिचायक है। भावी का प्रांगण आप के स्वागत को खुला है।

आन्ध्रविश्व विद्यालय
वाल्टेर
१६-९-५५

आपका,
सुंदररेड्डी

अपनी ओर से—

"कामि गाक मोक्ष गामि काडु" आन्ध्र प्रांत के प्रकांड पंडित तथा प्रसिद्ध अनुभवी योगी वेमना का यह पद्यांश मेरे अंतस्थल में ध्वनित होने लगा । क्या यह सच है?

जो हो. मेरे लिए कथा वस्तु मिल गई । इसी भित्ति पर काव्य का सृजन करना चाहा । हृदय की तंत्री स्पंदन करने लगी और उँगलियाँ लेखनी के स्पर्श केलिए लालायित होने लगीं, फलतः प्रस्तुत काव्य की सृष्टि हुई ।

मैंने पहले अपने मनोगत भावों को बीसवीं सदी के सभ्य आवरण के अंदर रखने का यत्न नहीं किया । बाद समझा यह अति साहस ही होगा । हिन्दी-साहित्य-जग कहीं इसको अपनी चीज नहीं समझेगा । इस भय से मैंने ऐसे कई पद्य छोड दिये जिनमें अश्लीलता की मात्रा अधिक हो । ऐसे पद्य

वलि-श्रेणी के चढने से
दो भांडों का मधुरस कैसा?
अरे अरे! दर्शन से ही
जीवन का ताजापन कैसा?

VIII

विस्तृत उर प्रदेश में
 क्योंकर इतना सुख मिलता ?
कमर - गगन के ऊपर तो
 क्योंकर स्वर्ग नहीं बसता ?

शोभा की मधुशाला में
 मधु-मदिरा पी पी गलभर।
बेसुध मन लेटा लेटा
 कोमल कर की तकिया पर
 —आदि आदि

हाँ थोडी-सी अश्लीलता हो, मैंने इसकी परवाह नहीं की। सच ही यह है कि परवाह न करनी भी चाहिये। संभोग-श्रृंगार में अश्लीलता की मात्रा कितनी है, यह रसज्ञ ही जानते !

मगर आदर्श के लिए यथार्थता के संहार करनेवाले कमनीय उन कलाकारों को मैं कौन-सा उत्तर दूँ? भय है, तो भी अंतरात्मा ने विद्रोह कर लिया। इस लिए मैं लाचार हूँ; उन महानुभावों से क्षमा-याचना चाहता हूँ।

IX

उमंग और आवेश में जिन पद्यों की रचना मैंने की उन सबों को मैंने अपनाया ही नहीं; छानकर रसग्रहण ही किया। हृदय ही कसौटी बना!

अंग अंग की आभा उजली,
बिजली-कल से मानो निकली।
तनी भृकुटी कुछ ऊपर चढ़ी,
गढ़ी नीलम की कमान चढी ॥

कोटि कोटि नव मन्मथ हारे
या होड होड शंबक हारे,
आँखें कुछ कुछ नीली नीली
जगत जीतने ढीली ढीली।

जौवन की जंत्री गुन गुन गुन
अहो बज रही है झन झन झन।
सुगठित मुख की ज्योति निराली
कमलों से बढ़कर हरियाली ॥

लाल लाल किरणों की बिजली,
सोने की शीशी से निकली।
राग मढ़ा मढ़ा
में केसरिया रंग चढ़ा ॥

रुग बर्णन के ऐसे ही कई पद्यों को अपने इस काव्य में स्थान नहीं दिया । क्यों कि इन में नयापन अधिक नहीं; केवल यह प्राचीन परंपरा के अलंकारों का भरमार मात्र है ।

इस प्रकार चुनचुन कर सुंदर फूलों से मैंने पद्य-पुष्पों की यह माला गूँथी । यदि भव्य पाठक-भ्रमरों को थोडा-सा मकरंद ही सही, इसमें मिले तो मैं अपने को कृत-कृत्य मानूँगा ।

गुंटूर
२० नवंबर ५५

सुब्बाराव "हरिकिशोर"

विषय-सूची
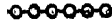
समर्पण

मन की कलियाँ फूली फूलीं;
परिमल - भर से झूली झूलीं ।
मीठा मीठा रस का स्वादन;
झूठा झूठा सुख का स्वादन ।

चुन चुन सुंदरतम फूलों को,
गूँथा मैंने इक माला को ।
ओहो ! इसका भाव निराला,
कितनी सुंदर मेरी माला !!

काव्य - जटित कंचन - वेदी पर,
बैठी वाणी के चरणों पर ।
मृदु - मृदु मन का तंतु बजाकर,
अर्पण कर दी माला सुंदर ॥

माँने अपनी अखियाँ खोलीं,
या कमलों की कलियाँ फूलीं ।
कनक - किरन - सम तन झूम उठा,
या तो मेरा मन डोल उठा ॥

उसने अपना हाथ बढ़ाया,
या मेरा सौभाग्य खुलाया ।
मधु वाणी में वाणी बोली
या तो अमि की छींटें डालीं ॥

"बेटा ! तेरी जय ही जय है,
ले जा तेरी माला यह है ।
अर्पणकर पाठक - भ्रमरों को,
सार्थक कर अपने सपनों को ॥"

* * *

“आओ आओ, पाठक - भ्रमरो !
सुस्वागत है मेरे प्यारो !!”

* * *

दिन बीत गया, युग बीत गया,
पर पर, हाय न कोई आया ।
फिर फिर मन में आशा यह है,
माँ की बोली कब झूठी है ?

कवि - कर्म

सौम्य - भाव ध्यान - मग्न में
मन - मानस का परिरंभन ।
मधुर कल्पना - श्रम - कण के
मोती मोती का चुम्बन ।।

आत्मप्रबोधन

रे मन की तंत्री ! बज रे बज,
नूतन भावों को सज रे सज ।
लेखनी ! खींच रेखाओं को,
चित्रित कर दे दिव्य - चित्र को ॥

प्रथम सोपान

श्री रूपी कान लगाकर
प्रेमी की करुण - कहानी,
सुनती रहती सस्मित जो
धन्य धन्य नारी - रानी ॥

बातों के मृदु - दागों से
ममता - करघे पर पट बुन ।
अर्पण करती प्रिय - जन को,
धन्य धन्य नारी - जीवन ॥

सस्मित वदन, विस्फारित नयन
अधर सुधारस छिड़काती,
विद्युत - लता - सदृश भावपूर्ण
मनोज्ञ तनु - यष्टि हिलाती।
कला - जटित स्वरराग - वेदि पर
बैठी वाणी मृदु बोली
"अहो ! वर्ण तुम्हारे अनमोल
अरविन्द हृदय में होली ॥"

आवरण अहे ! पंकज - पराग,

रुचि है कंचन - ऋतु - विकास ।

अंग है अहे ! मरंद - विभोर

रुचिर रुचिरतम मधु - विलास ॥

मुकुल - विकसित जानकर प्रमोद

झंकृत है विश्रांत नयन ।

पद्मिनी - तुल्य अभूत - अभाव

रूपसी देख तृप्त - नयन ॥

उन्नत उरोज, पद्मराग
चिन्हित है अधर - विकास ।
कंबु - कंठ, सूक्ष्म कटिवलय
लास्य नृत्य चरण - विलास ।।
महोन्नत स्निग्ध चूतर द्वय
विस्मय विधान है जन - मन ।
हस्तिनी - तुल्य अभूत - रिपु
गामिनी देख तृप्त - नयन ।।

यामिनी - रत्न, भामिनी - कुशल
चंद्रिका - स्निग्ध वय - विकास ।
कमठा - सदृश भृकुटी - विभव
नीलोत्पल गर्व - खर्व विलास ।।
मृणालिनी, मानस - मरालिनी
मुग्ध मराल विभ्रांत - मन ।
सुवासिनी - तुल्य अभूत - पूर्व
रूपसी देख तृप्त - नयन ।।

पार्थिव शक्ति, अपार्थिव - रति
　　　सृष्टि है विस्मय - विधान ।
पंक पंकिल, मगर पंकज
　　　नूत्न - भव - विस्मय - विधान ॥
तारिका - स्निग्ध हास निरख,
　　　फुल्ल है चांद सुखद नयन ।
कमलिनी - तुल्य अभूत - अभाव
　　　हासिनी देख भ्रमर - नयन ॥

बल चिन्ता का, भाव कल्प का
　　　धाताने जुड़ा मिलाया ।
कला - कुशल उँगलियों से मढ़
　　　यह सुन्दर रूप बनाया ॥
सम है सृष्टि, सृष्टि है सम,
　　　उज्वल भावना - प्रकाश ।
अहो ! धन्य चंद्रिका - तुल्य
　　　पावन कल्पना - विकास ॥

सुर धाम, पद्म - आसन पै
ज्ञान - मुद्र नयन पसार ।
विस्मय - विभोर, तृप्त - विशद
विज्ञ - कला - विभव अपार ॥
च्युत होकर सृष्टि - कर्म से
बोला धाता धर हास ।
"अनुभव करो पुत्र ! यह है
मेरी कल्पना - विकास ॥"

अध - कूलस्थित द्रुम - संग से
बढ़ता कच - लता - वितान ।
सीतल सुमंद पवन - संग
झरता मकरंद निदान ॥
पार्थिव - शक्ति, अपार्थिव - रति
भाव कीट - भृङ्ग - विधान ।
अहो ! प्रिया पर प्रेम धन्य,
धन्य है यह कृति महान !!

मोहकता आवरण खोल
नाच रही पलक पसार ।
भोली - भाली आँखों में
क्या है सम्मोद अपार ?
विमुध - वक्ष की स्मित - कलियाँ
अवगुंठन - भार उतार ।
रह रह चखना चाह रही
कण - कण माधुरी निहार ।।

शोभा के पावन - जल में
हूँ तिरता सुध - बुध हीन ।
हाँ सुख की परवशता में
रोम - रोम होता लीन ।।
विकसित कमलों के दल - द्वय
छोड़ते नहीं सुर - ध्यान ।
रग - रग आभा भँवर में
अंतस्थल - तरी महान ।।

रे मरुभूमि का फूला सुमन !
अहो भाग का भरोसा कहाँ ?
रे सौंदर्य की श्री - श्रेणि में
अहो भास का दिलासा कहाँ ?
विमल - हृदय के मधु - पराग से
उड़ना वायु के अंगार में ।
कल्पना के सूखे पंख से
झुकना शरम के जड़ - भाव में ॥

कामना की मृदु - पंखड़ी
रे मिल जायगी धूल में ।
भावना की मधु - रेणुका
रे उड़ जायगी अंत में ॥
सौगंध की आख्यायिका
मिट जायगी इतिहास से ।
चार दिन की यह चांदिनी
हट जायगी दृखांत से ॥

आज ही रे भोले सुमन !

बूड़ना है सुख - सार में ।

मुग्ध मन की मधु - कामना

मोदना है रति - केलि में ॥

हृदय - तर की रस - विपंची

झंकारना प्रिय - तान में ।

ओंठ - मधु की रस - वाहिनी

डोलना है सुरगेह में ॥

अहो प्रिये, मनोहारिणी !

बनना मेरी उपभोग ।

विरस - कला - मरुभूमि में

अरी खींचना सुरनाग ॥

हृत्तंत्र के सारंग पर

चलाना ऊँगलि सुहाग ।

सारी झंझटों को भूल

हाँ बनूँ तान का राग ॥

* * *

मैं आँखें बिछा रहा हूँ
स्वागत है हे सुकुमारी !
पलकों के मृदु रेशों पर
कर विमल पाँव - पँवारी ॥

* * *
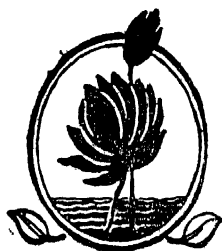
द्वितीय सोपान

रे हरिकिशोर ! मदहस्ती
चालों में तन्मय कैसा ?
कुंभों पर जृंभण करने
इतना भारीपन कैसा ?

रे भँवर ! नयन - कमल का
मधु मरंद पी बेसुध हो ।
पाक पाक बिंबाफल का
पी पी कैसा मधुरस हो ?

सावन - मेघों का गर्जन
मृदु मन - मयूर पर गिरता।
तो फैलाकर पंख निडर
तन्मय से नृत्य दिखाता ॥

री आंख! फैलाकर पांख
काहे को जाती कान?
नाक छोड़ने से फिर तो
नाक ही मिले नादान!

मृणाल के लालच में पड़
मन के मानस में तिरना।
कमलों के स्वेद - कणों के
मोती मोती को चुगना ॥

शशि - मुख की अमि भर पीने
अलकों की उलझन कैसी?
अधर - कुसुम का मधु पीने
भ्रमरों की बाधा कैसी?

वेनी - फन के डसने से
इतना मीठापन कैसा ?
रे रे बीछू - अलकों के
डंकों में मधुरस कैसा ?

प्रणय - गगन के मुख - शशि पर
अलकों का यह बंधन क्यों ?
शीतल दृग की किरणों में
उज्वल यह कालापन क्यों ?

मधुर प्रेम की चक्की पर
मिट्टी - जीवन है घूमा ।
रे छन - छन के घट घट में
मधु का मादकपन झूमा ॥

वीणा - गल का जाल बिछा,
मन - कुरंग को पकड़ लिया ।
आंखों की रस्सी फैला
नक्र - कील से बांध लिया ॥

उछाह के पंख लगाकर
मन मन मिल आगे - पीछे ।
उड़ चलते ताल बजाकर
ममता - मेघों के पीछे ॥

ओठों की मधु - लाली को
तोता बन चोंच लगाऊँ ।
उज्वल मुख की रजनी में
मलयानिल बन बह जाऊँ ।

नयन - कमल के चक्कर में
भँवर बन विचरूँ विचरूँ ।
मानस की मृदु लहरों में
मराल बन उतरूँ उतरूँ ॥

मोटा - तगडा बनने को
सुमनों का मधुरस पिओ ।
रे काम - पित्त मरने को
दांतों का दाड़िम - रस पिओ ॥

कनक - लता की कलि में ही
सुरभित निश्वासें कैसी ?
फूलों में ना, पातों में
मधु की धाराएँ कैसी ?

पके - पके मुँह - दाड़िम में
बीजों का यह क्रम कैसा ?
आभा पूरित छिलके में
मीठा मीठा रस कैसा ?

शशि - मुख की इन किरनों ने
हेरा - फेरा मानस को ।
मानस की उन लहरों ने
चूमा - चूमा मुख - शशि को ॥

उड़ती हैं विकल भाव से
कामुक मानस की चिड़ियाँ ।
मृदु - मृदु मादक जालों से
बांधो री उनकी गलियाँ ॥

सुन्दरता की जलनिधि में
नयनों की नैया चलती ।
स्तन - शिखरों से टकराकर
उलटी - पलटी हो रहती ॥

तन की चहार - दीवारी
कोमल मगर कपाट कहाँ ?
पलकों की चिक खोलो
पार करूँ, चितचोर कहाँ ?

आंखों की प्याली लेकर
सुन्दरता की शाला में ।
सुध - बुध खो घूमा घूमा
मादकता की गलि गलि में ॥

सुन्दर तनु - मधुशाला की
भरी हुई प्याली प्याली ।
रात पिये, सौ रात पिये
यौवन - भर की होली होली ॥

सुखद हृदय - फुलवारी में
मेरी बुलबुल रे उड़ती ।
पके पके प्रेम फलों को
जी भरकर चखती चखती ॥

निश्वासों का मलयानिल
अधर - कुसुम का मधु झर झर
मादकपन से मन - भँवर
झूमा झूमा गुनगुन कर ॥

उज्वल मुख की आभा से
मेरा मन चक्कर खाता ।
शोभा - आसव पीने से
रे क्योंकर थिर रह जाता ॥

मुस्कयानों की चितवन से
पागल है जीवन बनता ।
लोल लोल लहरों का लट
कितना ऊँचा है उठता !

लोनी - लोनी चालों से

मेरा मनुआँ मुस्क्याता ।

मृदु - चरणों पर दृष्टि डाल

भारी रोड़ा अटकाता ॥

आँखों की पटरी पर चढ़

जीवन की गाड़ी दौड़ी ।

यौवन का धूम फूँकते

संयम का स्टेशन छोड़ी ॥

तृतीय सोपान

कण - कण की करुण - कहानी
गलती है अंतःस्थल में ।
झर झर झर जल - धारा
बहती है इन नयनों में ।।

मूक - विश्व के महानिलय में
फैलाकर उलझन की डाली ।
झुरमुट की मधुर ओट में
बैठा है वह बलशाली ।।

भोली - भाली यह पछी
झठ गांठ - मूठ में डाली ।
नंदन - वन की शोभा में
फैलाई करुण - हवेली ।।

विपुल है यह दुखद बिछोह
हृदय है कुंचित - साल ।
ओह किस विधि कहूँ भार
झरना इक उसका हाल ।।

हृदय में टीस, जल आँखें,
विकल है नाद - अपार ।
स्मृति - पथ पर जब तक यह है
दिख पड़ता करुण - भार ।।

ओह क्या करूँ मैं भगवन् !
रज से बना अघ - शरीर ।
निराकार, साकार नहीं
पवन - सा हृदय - सुविचार ।।

दौड़ती हृदय में बिजली,
छेदती है आरपार ।
महाशून्य थामकर हृदय
तड़पता रहूँ रस - भोर ।।

मन विशृङ्खल अगोट, पर
विपंची बोलती हास ।
मधुरनाद, मगर अफ़सोस
क्षणिक है निबल अधिवास ॥

मंजुल मुख, सुकोमल अधर
मन है मुकुल हुन - पराग ।
छिद्ता भोलापन अपार
राग न, यह है अनुराग ॥

मूर्ख है स्यात् बड़भागी,
ज्ञान है आग तरवार ।
चुभती हृदय को इस ओर
निकलता रुधिर उसपार ॥

रूप अहा वह रूप नहीं,
दिव्य रूप साकार हुआ ।
कण - कण का स्नेह जलाकर
आरती उतारता रहा ॥

उज्वल आग, मधुमय आह
सीम स्वर्ग का बनता ।
रेशम की नरम धूब पर
चंचल नख है चलता ॥

मधुर महँक गुलाबी फूल
बन गया विषैला अस्त्र ।
चोट खाकर यह अंग, है
तड़पता रहा हो व्यस्त ॥

मन अधीर मधुर है वसन्त
सून्य गगन नित अशांत ।
ओह इक माल भर ढोना
मिलन अनित्य अश्रांत ॥

पुरुष पौरुष पुंज महान
पर अश्रूजल हा अभाग !
नेत्र लाल पौरुष विहीन,
धिक है यह रोष बिराग ॥

नित्यता है मधु निर्वेद,
अपार है गर आनंद ।
विस्तार है गगन दिगंत,
शून्य भव नखत है मंद ॥

ओह किस विधि ढोऊँ क्लेश
गरजता बारंबार !
खिलकती है ओह ! उद्दंड
वीचिकाएँ भयसार !!

विपुल है दुखद अभाव
मन है संकुचित साल ।
ओह किस विधि ढोऊँ भार
झरना इक उसका हाल ॥

मयूर - मयूरनी - नर्तन
मन में बज रहा मृदंग ।
कोक - कोकनी का क्रन्दन
उलटा जीवन का रंग ॥

था दिन ढला, पर न ढला
उत्तुंग विरह का बेला ।
शोक का भवंडर प्रचंड
छूट रहा भ्रमरों का छाला ॥

सुख में मोती, दुख में रोती
नारी जीवन यह है हाय !
नारी - जीवन का मर्म आज
कर लिया ग्रहण मैंने हाय !!

बदल गया हूँ रेणु - सदृश
करुणा की महा जलन से ।
बदल गया हूँ बाढ़ सदृश
गल विरह - महा - चितवन से ॥

मिलन - समय में सुख - धारा
बही बही इस मानस में ।
विरह समय में वह धारा
बदली आंसू के कन में ॥

विरह दिवाकर के तप से
भाप बनी सुख की धारा ॥
स्मृति - समीर के झोंकों से
बरस पड़ी मूसल - धारा ॥

रीते मेरे घट - भर में
जो सुख - धारा ढली ढली ।
विरह - ताप से विस्तृत हो
आँख फोड़ बाहर निकली ॥

सुखद - मिलन की जलनिधि में
सीपी - आँखें बढ़ी बढ़ी ।
विरह - स्वाति की बूँदों से
मोती - धारा कढ़ी - कढ़ी ॥

प्रणय - सिंधु के तल - तल में
बिखरे मोती ही मोती ।
बटोरने पगली आँखें
इतनी तन्मय क्यों होतीं ?

रे आंसू ! विरह - ताप से
तेरी मति भ्रष्ट हुई क्यों ?
दग्ध हृदय भीतर है तो
बाहर बाहर बहना क्यों ?

जन - पीडक की करतूतें
उलटी - उलटी रह चलतीं ।
तो मन - पीड़क दुख - धारा
रे क्योंकर अंदर बहती ?

विछोह की मोहज लहरें
परिरंभन करतीं चलतीं ।
मोती की ये मालाएँ
प्रेम - तत्व - बातें गढ़तीं ॥

अभिलाषा की मरालियाँ
तिरती हैं मानस में ।
अखियाँ मोती फैलाती
धरने के सफल यत्न में ॥

चंचल पुतली आँखों की
नेही माला टूट पड़ी ॥
मन की कल्पित लहरों में
मोती-आभा कहाँ पड़ी ?

क्षण - क्षण की ज्वालाओं से
जीवन की बेली झुलसी ।
आँसू - रस की झर -झर से
मानस की कलि कछु हुलसी ॥

निश्शब्द निशा, नभ - किरनें
खेल रही हैं थल - थल में ।
उज्वल मधु - प्रेम - तरंगें
लहर रही हैं मानस में ॥

"अहे सच कहो नाथ ! कहाँ
देते हो मुझ को स्थान,
या आँख में या हृदय में ?"
कह लिया मैंने निदान—

"दोनों में।"
"दो म्यानों में
एक खड्ग क्यों हो सुजान?"
म्यान-ना-सही आज खड्ग
मारता दोनों निशान॥

"तेरे हृदयाग्र-भाग पर
हे सखि! पहुँचना कैसे?"
बिना सोचे उत्तर दिया—
"तेनसिंह बनकर ऐसे!"

उसकी वचन-गुदगुदी की
सुधि आती है मुझे सदा।
ओह क्या कहूँ! चुभती है
हृदय को वह भारी सदा॥

दुबला-पतला तन सम्मुख
दिग्गज का बकुचा हल्का।
जीवन की ज्वाला-सम्मुख
फीकी फीकी रे उल्का!

दानी जन के चिंतन से
रे हृदय सुकोमल बनता।
प्रणय - जनी के चिंतन से
क्योंकर घट मोटा बनता?

स्मृति रूपी चंद्र - उदय से
आभा फैली रजनी में।
किरनों की सीढ़ी चढ़
मैं हूँ तेरी गोदी में ॥

कोकिल की कू कू - ध्वनि में
प्रिय गल का मीठा - रव क्यों?
किसलय के सुस्वागत में
शीतल - कर की शोभा क्यों?

रे कुसुमों के मधु - रस में
अधरों का मीठापन क्यों?
भ्रमरों की इस फेरी में
आँखों की वह उलझन क्यों?

मलयानिल की झोंकों में
निश्वासों का सौरभ क्यों ?
वसंत के नव - जीवन में
प्रिय - सुख का ताजापन क्यों ?

हिम - शिखरों की उन्नति में
प्रिय - यश का भारीपन क्यों ?
रे झरनों की झर झर में
ममता का वह कलरव क्यों ?

स्मृति - रूपी - चूना - मिश्रित
पावन ममता - धारा से ।
माया का रंग अनोखा
छूटा मेरे मन - पट से ॥

प्रेम - लता की सुध - कलिका
फूली मेरे मानस में ।
विरह - विदुर - मधु - झोंकों से
सौरभ फैला तन - भर में ॥

चतुर्थ सोपान

अरे यह भव्यमूर्ति है कौन ?
कह उत्थित भक्ति - भाव से ।
अहो खड़ी हुई प्रकृति - रमणी
रोमांचित हो विस्मय से ॥
अरी लेखनी ! तू बतला दे
अभी अभी क्यों ठिठक गई ?
महिमामय का वर्णन करने
अरी अरी क्यों हिचक गई ?

मिट्टी को मथ मथ, मधु का
आस्वाद दिलाने को,
रंग-बिरंग सारंग से
वन-रानी के सजने को।
सकल विश्व के जीवों के
मुँह-भर दाना देने को,
अथक यत्न करनेवाला
भगवन्! नमस्कार तुझको ॥

सकल भुवन का जीवन-दाता
कर्ता-धरता हे दिनकर!
"अनंत-राशि के भूले पथिक,
जागो रे जागो" कहकर,
चंचल मृदु-मृदु किरनों के मिष
चेतानेवाला जग को,
धन्य धन्य जग-मंगल-दायक!
प्रणाम बार बार तुझको ॥

मधु - मरंद की प्याली लेकर,
वनदेवी कुछ हरषाई,
अपनी लोलुप चोंच लगाकर
प्राची - रानी उतराई।
"कू कू कू" कहकर कोयल ने
मधु मंगल गान सुनाया,
"मर मर" कहकर मलयानिल ने
जीवन का तत्व निभाया ॥

बिखरे बालों को समेट
प्राची - रानी मुसकाई,
अमि - कण के उज्वल मुख पर
तिलक लगाकर इतराई।
अरे ! आज वनदेवी की
मुस्कयानों में चहल - पहल !
नव सुरभित - मधुर हृदय की
अरमानों में कल कल कल !!

रे काले भंवर ! गुनगुनकर
तेरा यह परिरंभन क्यों ?
मरंद की प्याली भर पीने
इतना हुल्लड़ करना क्यों ?
अरे फूल ! स्वार्थ रहित जीवन
तेरा कितना धन्य रहा,
मानव तेरा आदर्श गिने
तो मधुमय संसार अहा !

अंचचल एक राशि, उसी से
प्राणी धाराएँ निकलीं,
कुछ इठलाती, कुछ मुस्क्याती
फिर उसमें मिलने निकलीं ।
सकल विश्व का यह चिर रहस्य
समझानेवाली मुझको,
हे सीतल तरंगिनी सरिता !
प्रणाम बार बार तुझको ॥

परहित तन धारी हे रसाल !

मिट्टी के कण से ढलमल,

हृदय - सुधा - बूँदों से भरभर

पके - पके शीतल मधु फल,

सुखकर छाया में बिठा बिठा

श्रांत - क्लांत भूखे जन को,

पंखा चला खिलानेवाला

प्रणाम बार बार तुझको ॥

कामुक - जन की भैरव - वीणा,

सुखद स्वप्न की मधु - बिटिया !

चुम्बक की झूठी मृदु - तंत्री,

मधु - सख की प्यारी गुडिया !

रे विरह - मिलन की चिनगारी,

जीवन का मधु तिरस्कार !

माया - कश की मस्ती कोयल !

उडजा उडजा नमस्कार !!

काम - कुंड की धूमिल धूनी
ढलमल कर इक रूप बनी,
पाँच शरों की तीखी धारा
जीवन की मधु ज्योति बनी ।
सिंगार - हाट की उथल - पुथल से
कू कू करने धाक मिली,
मदमस्ती यह हौली कोयल,
आज कहाँ से आ निकली !!

अहो अहो मदन - मस्त कोयल !
आज कहाँ से हो आयी ?
क्या मधु - मादक कामदेव का
आह्वान सुनाने आयी ?
पर - सेवा कटि - बद्ध जनों का
प्रज्ञा - मन हरने आयी ?
या सुस्थिर चिर विश्व - धर्म का
नष्ट - भ्रष्ट करने आयी ?

श्रोताओं के हृदय-राज्य में
मधु रसाल की तख्ती पर,
अंकुर की छतरी के नीचे
ठाट-बाट से स्थित होकर,
"काम-केलि में कू कूद कूद"
आज्ञा बाँट बाँट सब को
शासन करनेवाली कोयल !
उडजा नमस्कार तुझको ॥

आर्यभूमि, धम - वर्त्म ही
सर्वोच्च शिखर है प्यारा ।
कल्पना - सृष्टि - साधन का
विश्रामगार है न्यारा ॥
कर्म - यज्ञ अरु ज्ञान - योग
इसके अधीन है सारा ।
कला - श्रम सौर्य - तेज का
यह है इक उन्नत पारा ।

उष्ण तेज विद्युत रक्त अहे
प्रत्येक आर्य के तन में,
पूर्ण - विज्ञान कला चातुर्य
प्रत्येक आर्य के रण में,
उन्नत भुजा महोन्नत सिर
प्रत्येक आर्य के गुन में,
भक्ति मरंद ज्ञान - रज है
प्रत्येक आर्य के मन में ॥

शृङ्ग - सम उन्नत नासिका है
महोन्नत हृदय का पारा।
लौह - फलक - सम दृढ़ वक्षस्थल
भीम पराक्रम का आरा।
कला - कलित कुंचित भृकुटी - पुट
उदात्त चिंतन का सारा।
अहो! आर्य - जाति आर्य - धर्म
है मुझको सब से प्यारा॥

महानिलय पंच तत्व में
खिल रहा 'अहम्' का भाव।
भीषण - रण भौतिक - भव से
बढ़ रहा तिमिर का पाँव॥
त्रिगुनात्मक भाव - सृष्टि का
घनीभूत हुआ प्रभाव।
किरणोज्वल सत्व - धाम है
हुआ चला आज विराव॥

तुमुल युद्ध ऊर्ध्व नाद से
बज उठा खोकर विवेक,
अहो अनर्थ हुआ, मानव
क्यों न हो सचेत - समैक ?
दग्ध ताप से मुक्ता - गण
कभी नहीं गलकर एक ।
छोह - सूत्र में मिलने से
बनती सुन्दर माला एक ॥

अहिंसापूर्ण सत्व - राज्य में
झंकृत कर भीषण - रव को ।
"प्रेम है सत्य, सत्य है प्रेम"
अंतस्थल में धरकर इसको ॥
पूर्ण - तेज सुचि कर्म - यज्ञ का
निज मर्म बताकर हमको ।
बना जग - जन वंदनीय, अहो
बापू ! नमस्कार तुझको !

मधुर मधुर अछर द्वय प्रेम
विनूल - विभव - भव - निधान ।
विसुध प्रेम विमल - स्वर्ग है
सत्य - शिव - सुंदर - विधान ॥
शांति - क्षमा - दया - भक्ति हैं
इसके हुए चिर अधीन,
अहो प्रेम - विहीन मानव
क्योंकर न हो पशु - समान ?

विशद प्रेम विश्व - निलय में
महा महिमामय निधान ।
शक्ति - मरंद, भाव - सुगंध,
इसमें हुए हैं विलीन ॥
है जिसके अंतराल में
पूर्ण - प्रेम लता - वितान ।
उससे बढ़कर कौन अहो
है मूर्तिमान पवमान !

विश्व वेदना के भागी

बन की ओर हुए गामि ।

श्रम - ऋण - श्रद्धांजलि से धो

सुध बना दी आर्य - भूमि ॥

म्लान चाल से विमल चलूँ

बुद्धं शरणं गच्छामि ।

भव - भय - भर से मुक्त रहूँ

संघं शरणं गच्छामि ॥
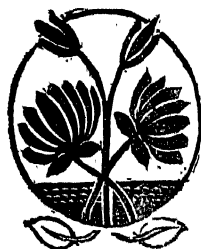
पंचम सोपान

रे सुखद - मिलन बेला की
  विरह - बिना स्थिरता कैसी ?
अंधकार - मय रात - बिना
  दिन की सुस्थिरता कैसी ?

सुख - दुख की नश्वरता में
  पागल जीवन रे ढलका ।
मिट्टी की गहराई में
  अब मधु प्रकाश है झलका ॥

फूलों की मुस्क्यानों में
  दुख - दर्द छिपा है रहता ।
रे पागल ! देख देख क्यों
  गड्ढे में गहरे गिरता ॥

जीवन की तंग गली में
मन की गाड़ी है चलती ।
माया - गढ़ के दल - दल में
रे पागल ! क्योंकर चलती ?

प्रेम - निलय के बादल में
आशा की बिजली चमकी ।
उज्वल उस क्षणिक - कांति में
घातक नश्वरता झपकी ॥

मादक मन की थाली में
जीवन - ज्योति कैसी रे !
कामुकता के जलकन में
तेल कहाँ ? वर्ति कहाँ रे ?

इस रंगमंच की लीला
कितने जादू से चलती !
मानवता की जलनिधि रे !
कीचड़ की गढ़िया बनती !!

कंकालों के क्रंदन में
बम बम का भैरव रव रे !
निर्दय - स्वार्थी "स्वाहा" में
प्रलय दैत्य का हपहप रे !

ईर्ष्या - उगलित हर्म्यों में,
बोधिसत्व का ज्ञान कहाँ ?
निर्बल - पीड़क हस्तों में
दाशरधी का त्याग कहाँ ?

नश्वर धन की गिनती में
मानव का जीवन सस्ता ।
हर्म्यों की ऊँचाई में
दुखियों का गौरव न्यस्ता ॥

मेरा मरालमन सुस्थिर
प्राणी - जीवन में तिरता ।
माया - वारी से मुड़कर
पावन ममता - पय पीता ॥

माया के अंधकार में
पढ़ना है जीवन - पुस्तक ।
भक्ति - तेल से ज्ञान - दिया
उज्वल होने दो नास्तिक ॥

चरणों से ठुकराकर मैं
गिरा गिरा माया - जल में ।
दिव्य - प्रेम की सीढ़ो चढ़
सोने दो पावन कर में ॥

उजली अँखिया - थाली में
निर्मल जलकन - मोती ले ।
पावन तेरे चरणों पर
अर्पण कर दूँ, ना तोले ॥

इन जीवन - कुसुमों को ले
नख - धारा में नहलाऊँ ।
पावन - शोभा - किरणों में
मन - कुरंग को दौड़ाऊँ ॥

सार - वचन—

[यह कलिका की करुण - पूर्ण आत्म - कहानी है। मगर विचारकर देखें तो यह क्षण - भंगुर जीवन की राम - कहानी ही है। कलिका नश्वर मानव - जीवन का प्रतीक है, नारी मिलन का और पति विरह का है।]

पैने पातों की वेदी पर,
किसने चढ़ा दिया सूली पर!
पर - सेवा - हित बलि हो जाऊँ?
पापों का या तो फल पाऊँ?

सिकुर - सिकुर कर रह जाती हूँ,
जड़ता के भय से दब जाती हूँ ।
साथी भी कोई साथ नहीं,
बचने की कोई साध नहीं ।

मंद हुई रजनी की आभा,
दमक उठी प्राची की शोभा ।
सहसा मेरा मन विकस उठा,
मुद - मंगल से तन झूम उठा ।

आँखों देखा मैंने सम्मुख,
मृदु - मंजुल इक नारी का मुख ।
मुझ पर देवी की आँख पड़ी,
या भ्रमरों की तो भीर पड़ी ।
हँसते हँसते हाथ बढ़ाया,
मानो मेरा क्लेश भुलाया ।
कोमल उस कर का परस हुआ,
सूली का जीवन अंत हुआ ॥

हाँ हाँ, खुशबू मेरे तन में,
खुशी - खुशी इस मेरे जीवन में !
सुंदर तन मेरा परख लिया,
मीठे ओठों से चूम लिया ॥
नाजुक कर से हेरा - फेरा,
सौभाग्य नहीं है यह मेरा ?

इतने में पति उसका आया,
देखा मुझको, मन ललचाया ।
[जो है चक्रवाक - सदृश अहा
कभी न मिलता प्रिया से अहा)

लोहे के कर में ले मुझको
रगड़ा रगड़ा सारे तन को ।
धीरे धीरे करकस करने
छोड़ा मुँह के बल मम गिरने ।
रौंदा उस पापी ने मुझको
भगवन् ! हाय बचालो मुझको ॥

*   *   *

समझो जीवन क्षणभंगुर है,
सुख - दुख का यह सम्मिश्रण है ।
सुख क्या, दुख क्या इस जीवन में ?
औ' क्या इस नश्वर जीवन में ?

*   *   *